आदर्श आत्मविलोपी मोरोपंत पिंगले

दत्तोपंत ठेंगड़ी

आदर्श आत्मविलोपी मोरोपंत पिंगले

- दत्तोपंत ठेंगड़ी

मोरोपंत जी के गौरव समारोह में यद्यपि आज मैं सहभागी हो रहा हूँ, फिर भी कृपया ऐसा न समझिये कि मैं भी उन्हीं के समान पुराना और अच्छा स्वयंसेवक कार्यकर्ता हूँ। ऐसी अगर कोई कल्पना करता होगा तो मुझे एक दृष्टि से आनंद होगा कि स्वयं असत्य कथन न करने पर भी मेरे विषय में अगर ऐसा संभ्रम फैलता होगा तो वह अच्छा ही है। लेकिन सच बात तो यह है कि मैं इतना पुराना और सच्चा कार्यकर्ता नहीं हूँ। हमारे छोटे से गाँव में दो शाखाएँ चलती थी। लेकिन मैं जब हाईस्कूल में था तब 'ज्यादा बुद्धिमान्' था। अत: शाखा में जाने की गलती मैंने कभी नहीं की। हमारे बाबूराव पालधीकर नाम के शिक्षक कभी कभी पास की शाखा में जानबूझकर ले जाते थे, तब मैं शाखा म◌ें जाता था। किन्तु स्वयं होकर कभी नहीं गया।

मुझे स्मरण है कि उस समय मैं और मेरे कई मित्र बाबूराव पालधीकर के आने पर उन्हें कैसे टालते थे, कौन सी चाल चलने से उन्हें टाला जा सकेगा, इसके लिए ही बुद्धि का उपयोग करते थे। उस समय शंकर राव उपासभामा तोल्हारी नाम के एक उत्कृष्ट कार्यकर्ता उस शाखा के लिए मिले थे। वे जब शाखा का उत्कृष्ट कार्य करते थे तब हम पालधीकर जी को टालने हेतु क्या करना है, इस बारे में विचार करते थे।आगे महाविद्यालय की पढ़ाई के लिए मैं नागपुर आया। मेरा और मोरोपंत जी का महाविद्यालय एक ही था। 'मॉरिस' नाम का। हमारा मॉरिस कॉलेज उन दिनों का बड़ा प्रगतिशील और रोमांटिक ऐसा माना जाता था। मेरा शाखा में न जाने का रवैया वहाँ भी मैंने चालू रखा था।

हमारे कॉलेज में ऐसे जो शाखा में न जाने वाले रोमांटिक युवा थे? उनका ग्रुप हुआ करता था। और कभी टहलने जाना, पिक्टर जाना, ऐसी प्रगतिशील बातें हम करते थे। टहलते समय उन दिनों यदि रास्ते की बाजु में शाखा चलती दिखाई देती तो हम बड़ा अशिष्ट आचरण करते थे। परसर की और देखकर हम विविध प्रकार के भाव प्रकट करते थे। 'इन्हें बुद्धी नहीं इसलिए ये दण्ड (लाठी) चला रहे हैं', ऐसी बात विभिन्न प्रकार के चेहरे, हाव भाव (नाट्याभिनय) कर हम बताते थे। हम जब ऐसा आचरण करते थे तब उन दिनों में मोरोपंत शाखा चलाते थे। यानि उनमें और मुझमें कितना अंतर है यह आपके ध्यान में आएगा।

फिर भी अगर लोग यह समझेंगे कि मोरोपंत जैसा पुराना और अच्छा स्वयंसेवक कार्यकर्ता मैं हूँ, तो मुझे आनंद होना स्वभाविक नहीं होगा क्या?

मोरोपंत और मैं....हम जब कॉलेज में एकत्र थे तब भी वे शाखा के कर्मठ कार्यकर्ता और हम प्रगतिशील, ऐसा ही था। शाखा में जाने वाले हमारे स्वयंसेवकों की मानसिकता की ओर हम बहुत चिकित्सक वा क्रिटिकल दृष्टि से देखते थे। उनमें कुछ सदस्य महाकर्मठ थे। हम लोगों से बात करते समय उनके मन में हमारे प्रति एक तुच्छता का भाव रहता था कि ये गैर जिम्मेवार हैं, इन्हें देश के बारे में कोई चिंत्ता नहीं। जिसे अंग्रेजी भाषा में 'होलिअर-दॅन-दाउ एटिट्यूड' ऐसा कहा जाता है। ऐसी उनकी मनोवृत्ति थी। हम आपसे बहुत अधिक पवित्र हैं। ऐसा भाव जब उनके मन से प्रकट होता था तब उनके बारे में दूरत्व की भावना हमारे मन में तीव्र हो जाती थी।

उस समय मोरोपंत की विशेषता यह थी कि अन्यों के समान वे कर्मठ थे, फिर भी हमारे ग्रुप के लोगों से वे मिलते थे और जब हम लोगों के साथ वे रहते तब हमारे समान ही व्यवहार करते थे। हमारे जो विषय रहते वे ही उनके भी रहते। हमारे समान वे भी हँसी मजाक करते थे। इसलिए हम लोगों से वे कोई अलग हैं, ऐसा हमें कभी भी लगा नहीं। यह उनका गुण उस

समय प्रकट हुआ और उनके इस प्रकार के आचरण से हमें लगने लगा कि मोरोपंत पिंगले सरीखा व्यक्ति अगर हमारे में पूर्णत: घुलमिल गए तो कोई हरकत नही। अनुभव लेकर देखें ऐसा सोचकर शाखा में जाने का विचार मन में आया 'अलौकिक नोहावे लोकांप्राते', यही मोरोपंत के स्वभाव की विशेषता है।

तब से जो हमारे संबंध प्रारंभ हुए थे, वे बहुत दृढ हो गये। इतने दृढ हुए कि कॉलेज में हमने एकत्र पढ़ाई की (कंबाइंड स्टडी)। उन्हीं के घर। उन्हीं के खर्चे से हम 'ब्रेकफास्ट' लेते थे और इतने निकट संबंधो के कारण हमने कभी भी गंभीरता से चर्चा नहीं की। एक-दूसरे की हँसी-मजाक उड़ाना, चेष्टा-कुचेष्टा, मसखरी इत्यादि मित्र के नाते हम करते आए हैं। अनेक बार मैंने यह देखा है कि हम दोनों एकत्र आए तो सामने के स्वयंसेवकों को ऐसा लगता था कि ये श्रेष्ठ लोग बैठे हैं,कुछ तो भी राष्ट्रीय- अन्तर्राष्ट्रीय वार्ता करने में मग्न हैं। किन्तु प्रत्यक्ष में हम आपस में हँसी-मजाक ही करते रहते थे। ऐसी हमारी मित्रता होने के कारण जब मोरोपंत के बारे में मुझे कोई पूछते हैं, तो मुझे भगवद्गीता का वह श्लोक याद आता है जो ग्यारहवें अध्याय में विश्वरूपदर्शन होने के बाद अर्जुन ने भगवान से कहा है कि "तू हमारा मित्र ही है,ऐसा समझकर हे कृष्ण, हे यादव, हे मित्र, मैंने तुझे तू कहकर बुलाया होगा, तेरी श्रेष्ठता कितनी बड़ी है; यह न जानते हुए शायद मेरी यह भूल हुई होगी अथवा प्रेम के कारण मैं भूल गया हूँगा, इसलिए मुझे माफ करना।" अर्जुन ने जो उस स्थान पर कहा है, वैसे ही विचार मोरोपंत की ओर देखकर मेरे मन में भी उठते हैं। मोरोपंत का व्यक्तित्व याने एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व, लेकिन सदा ही वे श्रेष्ठ है, इसकी सल (तपिश) हमें अनुभव नहीं हुई। चिड़िया के नाखून उसके पिलों को कभी घातक नहीं होते। वैसे ही उनके बड़प्पन की सल (तपिश) कभी भी स्वयंसेवक ने अनुभव नहीं की, यह जो उनकी विशेषता है उस दृष्टि से उनके जीवन का यदि हमने विचार किया तो मुझे ऐसा लगता है कि उसमें से सीखने लायक बहुत है। उनके जीवन के विषय में बहुत सी जानकारी प्रसिद्ध हुई है। मैंने भी भिन्न भिन्न वृत्तपत्रों से,

साप्ताहिकों से उनके जीवन के बारे में जानकारी पढी है। मुझे भी थोड़ी जानकारी है। लेकिन बहुत सी बातें ऐसी हैं कि जो शायद बाहर प्रकट होगी भी नहीं। हम आपातकाल के समय एकत्र काम करते थे। उस समय उन्होंने जो कार्य किया वह तीस वर्षों के बाद ही प्रकट होने लायक हैं। क्योंकि गुत्था-गुत्थी वाली बहुत बातें उसमें थी।अलग - अलग नेताओं से संबंध, भिन्न भिन्न अधिकारियों से संबन्ध.... .जिनके बारे में आज कहा नहीं जा सकता ऐसी ये अनेक बातें हैं। इंगलैंड में 'एक ऐसी पद्यति है कि तीस वर्षो के बाद सरकार के पुराने रिकार्डस प्रकाशित किये जाते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि तीस सालों के बाद जिन बातों के रिकॉर्डस भविष्य में आ सकेंगे ऐसी बातें उनके हाथों से घटी हैं।

वैसे तो उनके कर्तृत्व के बारे में बहुत सा बातें सुनी हुई हैं। कब कहाँ संघ की विभिन्न जिम्मेदारियाँ उन्होंने संभाली है यह हम सब जानते हैं। विश्व हिन्दू परिषद् के उनके कार्य भी हमें मालूम हैं। हमें यह भी मालूम है कि हिन्दुत्व का यह जो प्रभाव बढ़ा, हिन्दुत्व के प्रभाव ने जो यह उड़ान ली है उसके मूल में इन्हीं की प्रतिभा है। शिलापूजन हो, कारसेवा हो, जो जो इस प्रकार के उपक्रम हुए उनमें कभी इनका नाम बाहर नहीं आया। इस कार्यक्रम के संयोजक कौन हैं, इसकी रचना, योजना किसने की है उनका नाम बाहर नहीं आया। परन्तु, इन्हीं योजनाओं में से हिन्दुत्व ने लंबी छलाँग लगाई है और ये सारी योजनाएँ मोरोपंत की प्रतिभा में से ही स्फुरित हुई थीं, यह हम सभी को मालूम है।

विश्व हिन्दू परिषद के माध्यम से उन्होंने किए हुए इन कार्यक्रमों के अलावा उन्होंने अन्यान्य अनेक संस्थाओं को जन्म दिया है, व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया है। उनके कार्य की व्याप्ति कल्पनाओं की मर्यादाओं में नहीं सिमट सकती। कोई ऐसा न माने के हमें मोरोपंत के जीवन चरित्र की पूर्णत: जानकारी है। वह संभव नहीं। क्योंकि उनकी प्रतिभा बहुत श्रेष्ठ है। उन्होंने सैकड़ों लोगों को कार्य करने की प्रेरणा दी। हजारों लोगों का

मार्गदर्शन किया है। सैकड़ों परिवारों में वे कुटुंब प्रमुख के नाते माने जाते रहे, इसकी जानकारी महाराष्ट्र के लोगों को पहले से ही है और बाहर के लोगों को अभी ज्ञात हुई है। इस प्रकार के व्यक्तित्व के बारे में, चरित्र के विषय में अपने को कभी न कभी पूरी जानकारी मिलेगी ऐसा नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वे स्वयं कभी नहीं बताएँगे और प्रत्येक को उनके कर्तृत्व के एक दो या तीन ऐसे कुछ ही आयामों के बारे में जानकारी हो सकती है। उनके कर्तृत्व के सभी आयामों के बारे में संपूर्ण जानकारी रखनेवाला एक भी व्यक्ति इस देश में तैयार होना यह एक बड़ी असंभव बात है। इतने आयाम उनके कर्तृत्व के हैं। अंग्रेजी में एक वाक् प्रचार है, 'स्काय इज द लिमिट'। मर्यादा (सीमा) कौन सी, आकाश यही मर्यादा (सीमा) है। वे स्वत: होकर कभी किसी को बताएँगे नहीं क्योंकि ऐसा बताना अपनी परंपरा में बैठता नहीं।

मुझे याद है कि'आपात्काल में अशोक मेहता जी के पास मुझे जाना पड़ता था। भूमिगत होने के कारण त्वरित जाना आना संभव नहीं होता था क्योंकि गुप्तचर लगे रहते थे। इसलिए थोड़ा रुकना पड़ता था। उस समय वे अपनी पुरानी घटनाएँ बताते थे। एक बार मैंने उनको कहा कि 'अशोक भाई, आप अपना चरित्र लिखिए। आत्म चरित्र लिखने से नई पीढ़ी को जानकारी मिलेगी, मार्गदर्शन होगा। 'उन्होंने मेरी ओर तुरन्त कटाक्ष किया और बोले,'मिस्टर ठेंगड़ी यू आर आर.एस.एस. ऑर्गेनाइजर' मैंने 'हाँ ' कहा। किन्तु उसका इससे क्या संबंध है? ऐसा मेरे कहने पर वे बोले, 'संबंध है, अपनी परम्परा में यह बैठता है क्या? वेदों की इतनी ऋचाएँ हैं किन्तु उनके कर्ता ऋषियों का चरित्र कहाँ किसी ने लिखा है? उन्होंने आत्म चरित्र लिखा है क्या? अपनी ऐसी परंपरा है कि हम अपना जो श्रेष्ठ कर्तृत्व होगा वह समाज-चरणों में अर्पण करना और इस जगत् से विदा लेना'। अशोक मेहता जी से मैंने जब यह सुना तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। श्री गुरुजी के मुँह से यदि सुना होता तो आश्चर्य नहीं होता, पर अशोक मेहता ऐसा कुछ बोलेंगे यह सोचा

नहीं था। कहने का तात्पर्य यह है कि मोरोपंत अपना चरित्र स्वयं तो नहीं लिखेंगे और उनके सब आयामों के बारे में जानकारी रखनेवाला एक भी मनुष्य मिलेगा नहीं। किन्तु इस व्यक्तित्व के मूल्यांकन के बारे में भिन्न भिन्न लोगों की अलग अलग कल्पनाएँ उभर कर आ सकती हैं। हम दोनों का मित्र जैसा संघ में है वैसा ही संघ के बाहर भी है। इसलिए सबके साथ बोलने का प्रसंग आता है। चर्चा हुई उस समय एकात्मता यात्रा हो चुकी थी। शिलापूजन के निमित्त से विदेशों से भी शिलाएँ आना प्रारंभ हो चुका था और यह कल्पना मोरोपंत की है यद्यपि सबको मालम नहीं हुआ था कि फिर भी निकट के लोगों को यह मालूम था। तब वे मेरे और मोरोपंत के मित्र बोले,' यह कल्पना मोरापंत की है ऐसा कह रहे हैं तो क्या यह सत्य है? मैंने 'हाँ ' कहा। तब वे बोले, 'यह तो विश्व हिन्दू, का काम है। हिन्दुत्व और मोरोपंत ने यह कार्य हाथ में लिया याने हमने क्या यह समझ लेना चाहिए कि मोरोपंत धार्मिक व्यक्ति हैं? मैं चुप रहा। वे बोले, ' मेरे मन में उनका यह कार्य देखकर एक प्रश्न आया, आप उसका सच उत्तर देवें, क्योंकि मोरोपंत स्नान, संध्या, ध्यान, धारणा, पूजा, अनुष्ठान आदि कुछ करते हैं क्या?' मैंने कहा, ' मैंने तो देखा नहीं, करते भी होंगे चुपचाप, पर मैंने देखा नहीं।' फिर वे बोले- यह धार्मिक व्यक्ति है ऐसा इन्हें कैसे कहा जाएगा? संघ का प्रचारक, संघ का कार्यकर्ता इस नाते मोरोपंत का व्यक्तित्व उसका मर्म जिसने संघकार्य को समझा, डॉ हेडगेवार का कार्य समझा है, उसी के समझ में आ सकता है। जिसने संघ और परमपूज्य डॉ हेडगेवार का जीवन समझा नहीं है उसे मोरोपंत का जीवन, व्यक्तित्व और प्रचारकों के व्यक्तित्व का आकलन होना बहुत कठिन है। इसलिए मैंने चुप्पी साधी। मैंने चुप्पी साधी देख वे बोले, आप कछ भी कह लो, आपके मोरोपंत पिंगले इज एन एनिग्मा, एक अनाकलनीय व्यक्तित्व है।' मैंने कहा, ' ऐसा नहीं।' हम सब को पता है कि विश्वामित्र और अन्य ऋषियों ने जो यज्ञ किया वह धर्म ही था। किन्तु यज्ञ ध्वस्त करने वाले राक्षसों को रोकने के लिए राम और लक्ष्मण धनुष-वाण

लेकर गए। उन्होंने यज्ञ नहीं किया। लेकिन यज्ञ की रक्षा हेतु अगर वे धनुष-वाण लेकर गये तो राम और लक्ष्मण का कार्य उतना ही धार्मिक कार्य है और राम लक्ष्मण को भी उतना ही धार्मिक माना गया है। बाहर के व्यक्ति को यह समझ में आना सहज नहीं है। संघ के बारे में पूर्व में यही प्रश्न थे। यहाँ स्नान, संध्या सिखाते हैं क्या? गायत्री मंत्र सिखाते हैं क्या? ध्यान धारणा करते हैं क्या? कुछ भी करते नहीं होंगे तो इन्हें हिंदू धर्म रक्षक कैसे कहना? यह प्रश्न संघ में भी पहले कुछ लोगों ने उपस्थित किया।

हमने यह समझ लेना चाहिए कि धर्म का संरक्षण याने धर्म का पालन नहीं। धर्म का पालन श्रेष्ठ तो है ही। इसीलिए शंकराचार्य, अन्यान्य संत, बल्लभाचार्य, महामंडलेश्वर आदि सभी का अपना एक स्थान है। उसी प्रकार से धर्म संरक्षण में ये जो लोग हैं जैसे अशोक सिंहल , मोरोपंत पिंगले हों, इनके भी अपने अपने स्थान हैं, उन्हें उस दृष्टि से धार्मिक पुरुष कहना चाहिए। यदि राम-लक्ष्मण धार्मिक होंगे, यज्ञ का संरक्षण करते होंगे तो ये लोग भी उतने ही धार्मिक हैं। ऐसा यदि हमने कहा तो भी उसे कितना समझा होगा, मान्य हुआ होगा, यह कह नही सकते। किन्तु उसका वाक्य मेरे ध्यान में रह गया कि ' मोरोपंत पिगले इज एन एनिग्मेटिक पर्सन (enigmatic person) अनाकलनीय व्यक्तित्व है। वह प्रचारकों की विशेषता ही है। बाहर का व्यक्ति इसे समझ नहीं सकेगा। मा. बाबासाहेब आपटे, मा. दादा साहब परमार्थ... ... .प्रचारकों के सबके नाम लेना हो विष्णुसहस्त्रनाम से भी बड़ी मालिका तैयार होगी। उन सभी ने बहुत कार्य किया किन्तु प्रसिद्धि के पीछे वे दौड़े नहीं। संस्था को जो थोड़ी बहुत प्रसिद्धि आवश्यक होती बस उतनी ही। लेकिन प्रसिद्धि की आस न रखते हुए शांति से परदे के पीछे रहकर कार्य करना दूसरों को आगे करना उन्हीं को श्रेय देना यही उन सब की मानसिकता रही है।

इस बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हिन्दुत्व का इतिहास यदि लिखा गया तो उसमें मोरोपंत पिंगले यह नाम स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा। इतनी बड़ी उड़ान उनकी प्रतिभा के कारण

संभव हुई है। फिर भी उन्होंने प्रसिद्धि की आस नहीं की। अन्यों को वह मौका दिया। इतना कार्य जहाँ पर किया है, वहाँ अपना कोई अखंड स्थान हो इसका आग्रह नहीं किया। धार्मिक जीवन हो अथवा राजकीय अपने जहाँ-जहाँ काम करेंगे वह वहाँ तुरन्त अपना एक गट तैयार करना, अपनी नित्य चापलूसी करने वालों का एक गट बनाना ऐसी एक सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति रहती है। किंतु मोरोपंत पिंगले ने ऐसा नहीं किया। विश्व हिंदू परिषद का यह प्रचंड कार्य नि: स्पृहता से छोड़ दिया और दूसरे कार्य की और बढे। यह प्रचारक की विशेषता है। संघ की पद्धति में से यह आई है। पू. डॉक्टर जी के जीवन से आई इस मनोवृत्ति को ही 'आत्मविलोपी वृति' कहते हैं।

लोगों को ऐसा जो लगता है कि शक्ति प्रसिद्धि के कारण निर्मित होती है यह सत्य नहीं है। कुछ क्षेत्रों में प्रसिद्धी आवश्यक होती है। यह यद्यपि सत्य है किन्तु ध्यान में रखना होगा कि प्रसिद्धि के कारण एक माहौल मात्र बनता है। जो स्थायी नहीं रहता। अब क्लिंटन का ही उदाहरण देखिए। चुनाव के समय की उनकी इतनी सुंदर प्रतिभा बनाने का प्रयत्न हुआ कि वे राष्ट्राध्यक्ष पद पर चुनकर आए। लेकिन आज दो वर्ष बीतने पर उनकी लोकप्रियता का स्तर एकदम नीचे आ गया है। राष्ट्रनिर्माण के कार्य के समान कोई एक कार्य खडा करना हो तो प्रसिद्धि यह विश्वास की कसौटी हो नहीं सकती। इसके लिए आवश्यक है, प्रसिद्धि की जरासी भी आस न करते हुए, ध्येय प्राप्ति के लिए सवार होने वाले पागलपन से प्रेरित होकर, सालों साल कार्य में लगे रहने की प्रवृत्ति। श्रीगुरूजी के निर्वाण के बाद उनके जो पत्र प्रसिद्ध हुए उनमें से एक पत्र में उन्होंने कहा कि 'मेरा स्मारक न बनाएं' सबको आश्चर्य हुआ। किन्तु यह कोई एक क्षण में मन को सूचित करने वाला विचार था ऐसा नहीं। सम्पूर्ण जीवन भर में उनका यह विचार ओत-प्रोत भरा हुआ था। आपस में होनेवाले घरेलू बातचीत के समय मैंने तीन-चार प्रसंगों पर उन्हे एक अंग्रेजी कविता के माध्यम से आत्मविलोपी वृत्ति का

वर्णन करते हुए सुना। अलेक्लेण्डर पोप की कविता है ' Ode to Solitude' ऐसा उस कविता का नाम है उसमें एक कड़ी ऐसी है कि,

"Thus let me live unseen, unknown.

Thus unlamented let me die.

Steal from the world,

And not a stone to tell where I lie."

जगत् की दृष्टि में न आते हुए और जगत् को मालूम न होते हुए मुझे जिंदा रहने दो। मेरी मृत्यु भी ऐसी हो जिस पर कोई शोक न कर सके। यानि लोगों को पता ही न चले। जहाँ मुझे गाड़ दिया जाएगा वहाँ वैसा मालूम करा देने वाला पत्थर भी न रहे। ऐसा अलेक्जेण्डर पोप ने कहा है। यह कविता मैंने पूजनीय गुरुजी को तीन-चार बार बहुत उद्‌धृत करते हुए सुनी है। ऐसी आत्मविलोपी वृत्ति होगी तो ही उसमें से प्रभावी संगठन निर्माण होगा।

मुझे एक प्रसंग याद आता है। बाबा साहेब अम्बेडकर के अन्तिम दिनों में उनके सहवास में रहने का योग आया। जो धर्मांतर हुआ, उसके, पूर्व रात्रि में श्याम हॉटल में अपने कार्यकर्ताओं से वे बात करते थे ,और अनौपचारिक ऐसी बातें चल रही थीं। एक कार्यकर्ता ने पूछा कि, "बाबा, हमने अपने जीवन में देखा है कि कई संस्थाएँ ऊपर उठती हैं और नीचे आती हैं ऐसा क्यों होता है। बाबा साहेब बोले कि ' इस प्रश्न का उत्तर मैं कैसे दूँ? दो हजार साल पहले भगवान बुद्ध ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है। सबको लगा कि यह 'स्लिप ऑफ टंग' है। कहीं तो भी बोलने में गलती से यह भूल हुई है। तो उदासीनता जहाँ होगी वहाँ काम बढ़ेगा। उदासीनता नहीं होगी तो काम गिरेगा। कुछ तो भी बोलने में गलती हुई ऐसा सबको लगा। बाबा के ध्यान में यह बात आई। वे बोले, 'भाई ऐसा है कि आप के मन की भावना मेरी समझ में आए किन्तु यह ' स्लिप ऑफ टंग ' नहीं। फिर वह भिन्न अर्थ क्या है? वे बोले, "एकाध काम नए सिरे से शुरू होता है। उस समय उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। कुछ थोड़े लोग उसमें रस लेते हैं। वे

काम करने लगते हैं तब अन्य लोग उदासीनता से देखते हैं। तुच्छता से देखते हैं। तब कुछ लोग निराश होकर वह काम करना छोड़ देते हैं। जबरदस्त विरोध होने से कुछ लोग काम छोड़ देते हैं। तथापि कुछ लोग जिद्द से तत्व निष्ठ, ध्येयनिष्ठ होकर काम को आगे चालू रखते हैं और देखते देखते काम इतना बढ़ता है कि यश का शिखर सामने दिखने लगता है। जब तक यह यश का शिखर सामने आया हुआ नहीं दिखता, तब तक सब लोग स्वयं को भूल कर, आत्म केन्द्रितता छोड़ पूर्ण ध्येयनिष्ठा से सतत काम करते रहते हैं। लेकिन जब यश का शिखर सामने दिखने लगता है तब मन विचलित होता है और फिर बहुत लोगों के मन में ऐसी इच्छा निर्माण होती है कि यह जो यश है उसमें मेरा हिस्सा कितना, मेरे श्रेय का भाग कितना है? बाबा साहब ने उसका नाम दिया, ' क्रायसिस ऑफ क्रेडिट शेयरिंग '। मिलने वाली सफलता में कितना हिस्सा मेरा है, उस पर से स्पर्धा प्रारंभ होती है। ऐसी स्पर्धा जब शुरू होती है उस समय सगंठन के प्रमुख प्रणेता भी अगर उस स्पर्धा में दौड़ने लगे तो वह संस्था पतित होगी, नीचे आयेगी। किन्तु उन्होंने अगर श्रेय के हिस्से की उपेक्षा की तो फिर वह कार्य, वह संगठन वृद्धि किए बिना नहीं रहेगा। ऐसा बुद्ध के कथन का अर्थ था, इस प्रकार उन्होंने बताया। मुझे ऐसा लगता है कि संघ में जिसे हम आत्मविलोपी वृत्ति कहते हैं। उसका भी अर्थ यही है। इतने बड़े-बड़े काम किये तो भी श्रेय नहीं लेना।

प.पू. डॉक्टर जी के जीवन में हम क्या देखते हैं? 1925 में संघ प्रारंभ हुआ। संघ के प्रयत्नों के कारण ऐसी एक शक्ति निर्माण हुई, गट निर्माण हुआ, नियुक्लियस निर्माण हुआ। हिन्दू समाज ने कभी न दिखाया होगा इतना साहस, दंगे के समय दिखाया। किन्तु उसकी प्रशंसा जब बाहर होने लगी तो डॉक्टर साहब कहते थे कि कोई भी काम संघ ने नहीं किया, हिन्दू समाज ने किया। संघ याने हिन्दू समाज, हम एक हैं। श्रेय नहीं लेना, यह जो आत्मविलोपी वृत्ति है उसका उत्कट आविष्कार मा. मोरोपंत में देखते आए है। अब उन्होंने लोगों के आग्रह

के कारण कहिए अथवा विशेष परिस्थिति के कारण यह सम्मान स्वीकृत किया है। फिर भी उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगता है, यह मैं जानता हूँ। यह संघ की कार्यपद्धति में बैठने वाली बात नहीं है। किन्तु कतिपय विशिष्ट कारणों से यदि मोरोपंत ने इसे स्वीकृति दी है तो उसके लिए हमने उनका आभार मानना चाहिए। उनके अनेक गुण हैं। कर्तृत्व के अनेक पहलू हैं। लेकिन सब स्वयंसेवकों ने, कार्यकर्ताओं ने जिन-जिन को राष्ट्र का गठन करना है ऐसे सभी ने सबसे महत्वपूर्ण तथा ध्यान में रखने लायक बहुत महत्व का गुण है। वह याने यह आत्मविलोपी वृत्ति।

ऐसे आत्मविलोपी वृत्ति के लोग ही इतने लंबे समय तक अडिगता से, जीवटता से कार्य कर सकते हैं। यह आत्मविलोपी गुण हम में से प्रत्येक कार्यकर्ता स्वयं में अंगीकृत करने का निर्धारण करे यही मा. मोरोपंत जी का संदेश है, ऐसा मुझे कहना है। आत्मविलोपी होने से उत्त्कृष्ट सगंठित शक्ति और उस शक्ति में से हिन्दुत्त्व का परमवैभवशाली यश यही उनके जीवन का संदेश है। यह संदेश हम सब ध्यान में लाएं।

(वीर वाणी ' पत्रिका दीपावली अंक २००३ बेलगांव, कर्नाटक)